अहं

और

आत्मबोध



कृष्णविहारी सहल

चिन्मय प्रकाशन

Aham Aur Atma Bodh
By
Krishna Bihari Sahal

अहं और आत्मबोध

कृष्णबिहारी सहल



ताराचन्द वर्मा
चिन्मय प्रकाशन
चौड़ा रास्ता,
जयपुर—३

प्रथम संस्करण १६६८
मूल्य ५ रुपया

प्रमुख वितरक
THE STUDENTS'BOOK Co.
Chaura Rasta Jaipur-3
Sojati Gate Jodhpur

मुद्रक—
दी यूनाइटेड प्रिंटर्स
राधा दामोदर की गली
जयपुर—३

नयी कविता के मूल्यान्वेषी
दिवगत अनुज सुरेश चन्द्र सहल की स्मृति में
अन्तरंग क्षणों का यह छिन्नाभ्र
बुझा हुआ आकाश

कृष्णबिहारी



भूमिका

श्री कृष्णबिहारी सहल की कविताओं का प्रथम संग्रह प्रकाशित हो रहा है। 'ग्रह और आत्मबोध' की कविताएँ मैंने पढ़ली हैं और पहली बात जो मैं कहना चाहता हूँ वह यह कि इन कविताओं को किसी भूमिका की आवश्यकता नहीं है।

हिन्दी कविता स्वप्न और कल्पना की धारा से मुक्त होकर यथार्थ की भूमि पर उतर चुकी है। नई भूमि, नये परिवेश के अनुरूप उसे नया शिल्प भी अपनाना पड़ेगा। नई कविता से जो परिचित हैं वे जानते हैं कि बहुत प्रकार के प्रयोग हो रहे है। नये कवि के पास नई अनुभूतियां तो हैं, पर कोई स्वीकृत विधा नहीं जिसे अपना कर अथवा जिसे निखार कर वह अपने को अभिव्यक्त कर सके या अपनी अभिव्यक्ति को कोई विशिष्टता दे सके। सृजन की कठिनाई आज के कवि को जितनी है उतनी शायद पहले कभी नहीं रही। कविता आज सृजन से अधिक शोध है। ऐसी स्थिति में कोई मानदण्ड नही जिससे कविता पर निर्णय दिया जा सके। पर कविता पर जैसे पहले वैसे भविष्य में भी अन्तिम निर्णय जीवन ही देगा।

जो लोग कविता के नव स्वरूप की शोध में लगे हैं उनमें सहलजी को एक नये हस्ताक्षर के रूप में देख कर मुझे प्रसन्नता है। समय और जीवन के यथार्थों पर सहलजी की दृष्टि है, उनके प्रति उनकी प्रतिक्रिया में मौलिकता है, उसे व्यक्त करने का साहस है, वे युगीन युवक मनोवृत्ति और युगीन काव्य धारा के साथ हैं। इसे काव्य मान कर जीवन और समय कितना स्वीकार करेगा–कितना संजोयेगा यह भविष्य-वाणी करना किसी के लिए असम्भव है; कम से कम मेरे लिए तो है ही।

नव सृजन ने पुराने उद्देश्यों को भी छोड़ दिया है उनमें एक था संवेदना जगाना। शायद उसे त्याग कर भी सृजन संम्भव है। पर एक बात मेरे मन में स्पष्ट है कि कविता से कुछ भी पाने के लिए उसके प्रति संवेदनशील होना जरूरी है।

मैं 'ग्रह और आत्मबोध' के पाठकों से यह कहना चाहूँगा कि वे उसे अपनी संवेदना दें। वे प्रतिदान में जो पाएँगे उससे वे निराश न होंगे।

कवि का यह प्रथम चरण है। उन्हें अभी लम्बी यात्रा तय करनी है। उनकी प्रगति और उनके विकास को मैं रुचि और उत्सुकता के साथ देखूँगा, क्यों कि उन्होने घोषणा की है—

मेरी अनवरत आस्थाएं
अनन्त सौ-दर्यवती पीडाओं को
गर्भ से निकलते देखती हैं।"

डा० हरिवंश राय 'बच्चन'

प्रतिक्रिया

आपकी पुस्तक की २६ कविताएँ पढ़कर जो 'प्रतिक्रिया' मेरे मन में जागी, वही लिख भेज रहा हूँ।

आज के युग की 'विसंगति' के प्रति आपके मन में 'आक्रोश' है। आपको इस युग के 'दो रूप' और 'त्रिशंकु' पन पर 'सर्प-दंशन' जैसी गहरी पीड़ा होती है। आपकी प्रमुख समस्याएँ रोटी और रति के विषय विभाजन की है। 'नर और मादा' 'सड़क और सैक्स' आपकी कविताओं के नाम हैं—'झेला हुआ यथार्थ', में वह बहुत स्पष्ट है। आपने लिखा है—

जितना जो कुछ
मैंने अकेले जिया है भोगा है
और लिखा है
उसे कोई न और जियेगा
न भोगेगा और न पढ़ेगा।

इस सारे विराट विद्रूप व्यापार मे 'निरर्थक इकाई' और 'बेमानी दिन' मे कविता के बदले हुए 'रोल' से आप परिचित हैं। आपको 'अहं' के दर्शन तो हुए हैं पर 'आत्मबोध' अभी पूरी तरह नहीं हुआ है।

कहीं-कहीं वियतनाम की हिंसा और देश में फैले भ्रष्टाचार की ओर भी इशारा है। पर समस्या केवल युद्ध और शान्ति की या सैक्स की ही नहीं है। राजनैतिक और वैयक्तिक समस्याओं के अलावा सामाजिक-आर्थिक-समस्याएँ भी भारत के आज के बुद्धिजीवी के परिवेश में घुल मिल गई हैं। उन पर संकेत से व्यंग्य हैं। पर सीधी चोट नही।

कुल मिला कर आठ दस कविताएँ मुझे ऐसी लगी जिनमें कविता का आकृति-बंध अधिक कसा हुआ और परिणाम कारक है—जैसे 'ह्यूमैनिज्म', 'कंकाल' 'फार्मेशन', 'प्रतीक्षा', 'बेमानी दिन', 'भाव'।

नव्यतम कविता का बौद्धिक-पक्ष भाव स्तर से अलग नही होता। अभी भी आपकी कुछ कविताएँ ऐन्द्रेतिक या छायावादी भावुकता या प्रगतिवादी सपाट अभिधा के प्रभाव से मुक्त नही है। पर सहलजी आगे बढ रहे हैं, इसमे सन्देह नहीं। विद्रोह के लिए विद्रोह अर्थ शून्य है। उसकी दिशा अहं के पोषण मे नही पर खण्डन में होगी-यह उन्हें पता है।

आशा है कि आगे आने वाली कविता के सहलजी सशक्त हस्ताक्षर बनेंगे।

डा० प्रभाकर माचवे

अपनी बात

यह मेरी रचनाएँ हैं। जो कुछ मैं भोगता रहा हूं और जो कुछ मेरी चेतना भिन्न-भिन्न स्तरो पर अनुभव करती रही है—वह सब इन रचनाओं में है। उसके बाहर जो कुछ भी है-वह भी मेरे अजाने ही मेरे भाव बोध का अंश है। इसलिए मैं इतना कह सकता हूं कि इन रचनाओं में पूरी ईमानदारी है। आक्रोश, व्यंग्य, विसंगति, कुण्ठा जो कुछ भी है-मुझे युग ने विरासत में दिया है। मेरी जेबों मे यही तो पूंजी भरी है। अब अगर मैं इस पूंजी को बांटना चाहता हूं तो इस लिए कि इसके अलावा मैं और कुछ कर भी तो नही सकता।

विभिन्न दृष्टि बिन्दुओ से जिन्होने इन रचनाओं को परखा है—उन विद्वान आलोचकों एव कवियों के विचार बिन्दु कहां-कहां मुझे छूते रहे हैं—इसका निर्णय आप पर है। किन्तु मैं डा० बच्चन एवं डा० माचवे का आभारी अवश्य हूँ।

मुझे कई बार भोगे हुए क्षणों में चरम बिन्दु पर किसी ने जोर से पीछे से पुकार-चौंका दिया है, तो वह एक स्वर है—डा० जगदीशचन्द्र जोशी का।

सन्तोष को एनिमिया हो गया है। उसी हालत में वह इन कविताओं को सुनती रही है और मुझे लगता है कुछ ज्यादा एनिमिक हो गई है। मेरा अहं कहीं न कहीं चुभने वाला है। इसका एहसास मुझे बार-बार होता है। सन्तोष को भी शायद होता हो।

राजस्थान के ख्यातनामा प्रकाशक श्री ताराचन्द वर्मा का मैं बड़ा आभारी हूँ-जिनकी दिलचस्पी के कारण यह पुस्तक सुन्दर रूप में प्रकाशित हो सकी है।

बंसत पंचमी, १९६८ — कृष्णबिहारी सहल

सहल-सदन

पिलानी

अनुक्रम

त्रिशंकु और मैं



त्रिशंकु द्रष्टा है
क्योंकि वह अनन्त आकाश के
ऊर्ध्वमुखी विस्तार को
नीलिमा की चतुर्मुखी व्यापकता को
निर्निमेष देख सकता है।
क्योंकि वह,
चरणांत में दिगन्तव्यापी प्रसार का
अतल गहराइयों और सागरों की विराटता का
अनवरत प्रत्यय कर सकता है—
किन्तु यह चाक्षुप प्रत्यक्ष है—
द्रष्टा का—
उसका दर्शन, मानव और मानवेतर
भूगोल, खगोलों,
पिंड, ब्रह्माण्डों
तारकों—
नीहारिकाओं
और असंख्य लोकों के
अप्रतिम सौन्दर्य को

चेतना का उपभोग करना है—
चाक्षुप यज्ञ ।
किन्तु वह मात्र द्रष्टा है—
मै ऊर्द्ध वचेता हूँ,
त्रिशंकु नहीं, स्रष्टा हूँ ।
मेरी अनवरत आस्थाएँ
अनन्त सौन्दर्यवती पीड़ाओं को
गर्भ से निकलते देखती है ।
मेरा चाक्षुप प्रत्यक्ष—
संवेदनाओं की गरिमा से
अह्लादित है—
पिंड और ब्रह्माण्डों में
मैं उन असंख्य
नीहार कणों को देखता हूँ
जो वेदना की अकुलाहट से ढले
अश्रु है—
जो नियति से टकराते हुए
मानव के माथे पर उभरी
लकीरों की छाया में
ढलते हुए सीकर है ।
धरती के गर्भ से फूटे
असंख्य अंकुरों की अकुलाहट
बादल के आलिंगन में
कसी हुई बिजली की तड़पन
सागरों के वक्ष में
मचलते हुए तूफानों की गर्जन

मानव मन की भटकती हुई
निस्सीम चेतनाएँ—
मैं द्रष्टा हूँ,
त्रिशंकु नहीं—
क्योंकि मैं सौन्दर्य की पर्तों के नीचे
अँखुवाते हुए
जीवन को देखता हूँ।



निरर्थक इकाई



पृथ्वी पर गिरती हुई
बूंदों में से--
एक बूंद को गिरने से
मैंने बचा लिया
हाथ में थाम लिया
मैने सोचा था
अगणित बूंदों के
निरर्थक विखराव से
मैं इस एक बूंद का
अस्तित्व बचा लूँ।
चाहा था
इसका व्यक्तित्व
सुरक्षित कर लूं
यह भी,
अनन्त विखराव में
लुप्त न हो जाय

डूब न जाय ।
किन्तु मेरे हाथ में
वह बूंद
बूंद ही न रही
वह बिखर गई
उसका व्यक्तित्व न रहा
वह अनस्तित्व बन गई ।
किन्तु यह अनिवार्यता थी—
क्योंकि मैं स्वयं बिखराव था
स्वयं अनस्तित्व था
स्वयं व्यक्तित्वहीन था
मैं जो असंख्य मानवों के
साथ बिखरती हुई
एक निरर्थक इकाई था
जो टूट गई थी ।



कष्टेर विकृत भाल,
त्रासेर विकट भंगीयत



'कष्टेर विकृत भाल
त्रासेर विकट भंगीयत ।'
मृत्यु !
तुम्हारे नाम से त्रस्त
यह संसार
कभी तुम्हारा स्वागत
भी करता है तो
एक दीर्घ निःश्वास से ।
एक अनिवार्य पराजय से ।
एक वितृष्णा से
या वैराग्य की
एक धूमिल मरीचिका से ।
ऐसे भी हैं—
जिन्हें तुम्हारा भय नहीं है—
किन्तु वे भी—

जानते हैं कि
तुम्हारा आना
एक अनिवार्यता है
एक अन्तिम संघर्ष है
ऐसा संघर्ष
जो दुर्निवार है
मैं जानता हूँ कि
तुम एक आशंका हो
जो अवश्य आओगी
किन्तु मैं इस आशंका मात्र से
त्रस्त नहीं हूँ—
मैं चाहता हूँ कि जब,
तुम्हारा मौन जाले का
दवाव पड़ने लगे,
जब तुम्हारे वायवी चरणों
की मूक पदचाप उठने लगे
तुम्हारी कंकाल उंगलियाँ
एकाएक
उठ कर
मेरी ओर
संकेत करने लगें
तो मेरे भीतर
कोई 'रडार' यंत्र
उन संकेतों को
पकड़ ले—
मेरे भीतर कोई 'ऐन्टैनी'

तुम्हारी पदचाप को
सुनले
कोई पर्दा
तुम्हारी अप्रतिहत छाया को
रूपायित करदे
और जब तक
तुम मेरी
मानवी नियति को
मुझ पर छा दो
मैं बिस्तर से उठूँ
एक चाय का प्याला
पीलूँ,
सिगरेट के दो वार
कश ले लूँ
अपनी जेबें टटोल कर
पैसे गिन लूँ
अपने बिलों का हिसाब
कर लूँ,
चंद कागजात
कुछ चिट्ठियाँ
डायरी के कुछ पन्ने
कुछ आत्म स्वीकृतियाँ
कई मानी बेमानी बातें
कविताएँ, कहानियाँ
सब को सहेज लूँ।
कुछ फाड़ दूँ, जला दूँ,

ताकि जितना जो कुछ
मैंने अकेले जीया है, भोगा है
और लिखा है
उसे और न कोई जियेगा,
न भोगेगा और न पढ़ेगा ।
दीवारों की वे परछाइयाँ
पोंछ दूँ
जिनको सिर्फ
मैंने ही अर्थ दिये थे ।
छत के वे दाग
जिन्हें मैं मूर्त करता गया,
फर्श पर पड़ी वे लकीरें
जिन्हें मैंने रूपायित किया
बिस्तर की सलवटें
जिनमें कई नाम
अब भी पढ़े जा सकते हैं ।
वे प्यालियाँ
जो कई होठों से लगी
और जूठी पड़ी रहीं,
शीशे की वे पर्तें
जिनमें कई चेहरे
अब भी जड़े हैं—
सब मिटा दूँ
उन्हें समेट लूँ
उन्हें मार दूँ
क्योंकि मैं इन सभी

रूपों में जीता हूँ।
सिर्फ मेरे मर जाने से
ये सब नहीं मरेंगे
और यदि ये न मरे
तो मेरे मर जाने का
कोई अर्थ ही नहीं है।



दो-रूप



मैं कल उस पिक्चर में
रो दिया।
बड़ा दर्द सा मन को
छू गया
ड्रापर से रिस रिस कर
गिरती बूंदों की तरह
मेरी छलछलाई आंखों से
बूंदें टपक पड़ीं।
संगीत की सकरुण मूर्च्छनाएं
मुझे मथती चली गईं
मेरा मन एसप्रेसों की
मशीन में उफनती कॉफी सा
मटमैला हो गया।
मुझे जीवन की गंध आने लगी
चेतना के अनेक स्तरों में
एक स्तर मुझे दर्दा गया

अंसुआ गया—
पर्दे पर
एक अच्छा इन्सान मर गया ।
कितना आदर्श था
उसका जीवन
वह साथियों के लिए
मर गया
प्यार के लिए
बिखर गया
आदर्श के लिए
मुरझा गया
और मुझ जैसे
सैकड़ों दर्शकों को
रूमाल आंखों पर लगाने के लिए
मजबूर कर गया ।
पर मेरी संवेदनाएँ तो
एक्टर तक नहीं पहुँची ।
मेरा दर्द तो डायरेक्टर ने
नहीं देखा ।
मेरी भावुकता तो
प्रोड्यूसर के बैंक में
जमा नहीं हुई ।
पर क्या मैं दर्दाया था ?
क्या सचमुच रोया था ?
मेरे पड़ोसी की मौत पर
तो मैं रोया नहीं

वह गरीब था
हालांकि अच्छा आदमी था।
उसका बेटा तो कहता था–
वह देवता था
पर मैं उसके
शव के साथ
शमसान तक तो नहीं गया,
एक बूंद आंसू नहीं गिराया–
क्योंकि उसकी पत्नी
मेरे दर्द को देख लेती–
उसका बेटा
मेरी संवेदना को पी जाता
उसकी अबोध पुत्री
मेरी भावुकता को
अपने नन्हे से हृदय के
'लॉकर' में बंद कर लेती।
और, यह मुझे बिल्कुल
अच्छा नहीं लगता
कि कोई मेरी चीज
मुफ्त में अपनी बनाले।



मुर्दा



अभी उल्लू
दौड़ रहे थे–
मुर्गा नीद में
लेकिन मैं
तारों की सुरमई रात में
बेगानी धरती पर उठ गया।
यह जानते हुए भी
कि चादनी अभी-अभी
श्लथ सी
किसी क्षण को भोग लेने के
बाद
म्लान सी सोई पड़ी है।
मुझे सिहरन नहीं हुई
मैंने यह भी नहीं चाहा
कि कोई मेरी बांहों में भी
यों ही थक कर बिखर जाता।
मुझे रीतेपन की
खोखली अनुभूति या ऐहसास

बेमानी दिन



बड़ा बेमानी दिन है
कुछ भी काम नहीं,
उठा और
पूजा करने लगा
पत्नी से लड़ाई की
खाना नाले में बहा दिया
जोर जोर से सुबकती
पत्नी की आवाज
लोगों की फुसफुसाहट न जगाये
रेडियो खोल दिया,
और लड़ाई के समाचार
सुनने लगा।
मैं जानता हूँ कि
आज रात वह मेरे साथ नहीं,
सोयेगी।
इसलिए गिना लोन्नो ब्रिगिटा

की पिक्चर देखने चल दिया ।
सभी नंगी औरतें
एक सी ही होती हैं,
पर पी. डब्ल्यू. डी.
यह सड़क क्यों नहीं बनाती ?



झेला हुआ यथार्थ



रात के चार बजे
फैक्टरी का दरवाजा तोड़
सड़क को फोड़
घर के दरवाजे को
उलांघ कर
पत्नी की चारपाई के नजदीक
मैं दिगम्बर हो गया,
(इन्तजार करने लगा
महाभिषेक (?) का.........................)

कमरे की सब चीजें
सहस्र भग हो गयीं—

मेरे डरे भिंचे "मैं" ने
ढीले हो, कपड़े पहन लिए

दिगम्बर और सहस्त्रभग
व्यर्थ हैं
अब डराते हैं ।

इसलिए दिखती खाली चारपाई में
मुर्गे की बांग के साथ
मैं सो जाता हूँ
मर जाता हूँ ।



झेला हुआ यथार्थ



रात के चार बजे
फैक्टरी का दरवाजा तोड़
सड़क को फोड़
घर के दरवाजे को
उलांघ कर
पत्नी की चारपाई के नजदीक
मैं दिगम्बर हो गया,
(इन्तजार करने लगा
महाभिषेक (?) का.............................)

कमरे की सब चीजें
सहस्र भग हो गयी—

मेरे डरे भिंचे "मैं" ने
ढीले हो, कपड़े पहन लिए

दिगम्बर और सहस्रभग
व्यर्थ हैं
अब डराते हैं ।

इसलिए दिखती खाली चारपाई में
मुर्गे की बांग के साथ
मैं सो जाता हूँ
मर जाता हूँ ।



तीतर पंखी



बेतरतीब शाम के
अनरेख बादलों में
कुछ कड़िया हैं–
जजीरनुमा
गहमयाहे रंगों से भीगी
तीतरपंखी कड़िया
अनेक गन्धों में डूबी
अनबूझे शब्दों में पगी
इस बंधी हुई शाम को
खोलो।
ठिगनाया सा पेड़
अबोला खड़ा है,
निष्पत्र–
हवा की थिरकन
नकारता हुआ
सांझ के रंगों को

कुरेदता हुआ,
इसे बांधो मत ।
यह तीतरपंखी
बादलों से
बहुत नीचे है ।



तीतर पंखी



बेतरतीब शाम के
अनरेख बादलों में
कुछ कड़िया हैं–
जजीरनुमा
गहमयाहे रंगों से भीगी
तीतरपंखी कड़ियां
अनेक गन्धों में डूबी
अनबूझे शब्दों में पगी
इस बंधी हुई शाम को
खोलो।
ठिगनाया सा पेड़
अबोला खड़ा है,
निष्पत्र–
हवा की थिरकन
नकारता हुआ
सांझ के रंगों को

कुरेदता हुआ,
इसे बांधो मत ।
यह तीतरपंखी
बादलों से
बहुत नीचे है ।



सड़क और सैक्स



अनुभूति के द्वार पर
किसी की धीमी
पदचाप सुनाई दी
भावना के द्वार को
किसी ने नाजुक सी
उँगलियों की आवाज से
खटखटाया ।
तन की गुलाबी परत में
किसी की आवाज ने
एक हल्की सी गुदगुदी
दौड़ा दी ।
पदचाप ने विवेक का
मुँह बन्द कर दिया,
उँगलियों की खटखटाहट ने
चिंतन के स्वर सुला दिये
और उस आवाज के

कोमल रेशमी डोरों ने
बुद्धि को चुपचाप
बांध दिया ।
मुझे सैक्स का ऐहसास हुआ
सड़क पर–
तारकोल की उस लम्बी
सड़क पर
जो काम के प्रतीक
सांप सी लहरा रही थी,
नुकीले वक्ष के जादू ने मुझे कांटा
चुभा दिया ।
कसे कसे
चिपटे हुए कपड़ों में
मुझे अनावृत कर दिया ।
उसकी लाज को
यौवन ने छिपा लिया था, और
मेरी अतृप्ति ने
मेरे वेमानी संकोच को ।
वह सिर्फ नारी थी,
मैं मात्र पुरुष–
वह वरसती हुई बूंदों के बीच
रेत पर पड़ी हुई मछली थी–

छटपटाती हुई,
आंखें फाड़ कर
सांसें फेंकती हुई
दम तोड़ती हुई—
उसमें मौत की ताजगी थी,
जो नये जन्म की
प्रतीक्षा करती है,
नई सुबह को जगाती है ।
और मैं,
असंख्य सांपों की
फुफकार सुन रहा था
वे, जो मुझे
काट रहे थे ।
उसकी हर तड़पन
मेरी रगों में
विष भर रही थी-हलाहल
कालकूट,
और मैं डूब रहा था ।
उसके दर्द को मैंने
गंवारा ही नहीं ।
उसके भीतर उभरते
अमृत को मैंने

छुआ ही नहीं ।
यह सड़क
मेरे सैक्स से दर्दीली है,
और यह सड़क
उसके गर्भ में
अँखुआती
चेतना से रूँआसी ।



मंत्र द्रष्टा



काल के अनन्त स्तरों में
एक स्तर उभरता है–
अतीत का विकल्प
आरण्यकों का युग
जिसके सीमाहीन विस्तार में
मानव की जिजीविषा
ऊर्द्ध्वमुखी थी।
वनों की हरीतिमा में
विशालकाय वृक्षों के
तिमिरांकित शिखरों में
आलोक की चेतना
प्रेरणाएँ देती थी,
वेद, उपनिषद्, दर्शन
मानव की एकांतिक आस्थाएं
गिरिशिखरों के पृष्ठों में
अंकित कर देती थीं–

कुछ संदर्भ, कुछ रेखाएं, कुछ मंत्र ।
अन्धकार की सहस्रमुखी छायाएँ
नतशिर होकर—
सूर्य के तेजोराशि
सहस्रांशों में लय होती हुईं
साम मंत्रों की अनुगूंज बन जाती थीं ।
कोलाहल से दूर
मृगाक्षी कटाक्षों के नीलाभ
सरोवरों से परे,
लालसाओं के वन्दगान से ऊपर
रक्तिम चटुल पदचापों से मुक्त
आलिंगनों की दहकती मांसलताओं के पार
निभृत एकांत में
मानव-ऋषि की साधनाएँ उभरती थीं
'तमसो मा ज्योतिर्गमय ।'
मैं,
उसी ऋषि मानव की
भावी पीढ़ी
काल की अनन्त रेखाओं में
वर्तमान का एक बिन्दु,
मंत्रों की नवीन सर्जना करता हूँ ।
मंत्रों को देखता हूँ ।
किन्तु मेरा एकांत

कोलाहल से आपूरित है ।
मेरी साधना असंख्य मनुष्यों से भरे
नगरों, ग्रामों, कस्बों, मिलों-फैक्ट्रियों
और मानवी जंगलों में अनुस्यूत है ।
ऊर्द्ध मुखी पर्वत, मेरे मानस को
दबाये हुए हैं, उन्हें जकड़े हैं
रौंधते है, आच्छन्न किये हैं,
वे पहाड़ मेरे कमरों में बन्द हैं–
जहाँ घुटन की अबाध छायाएँ
और लम्बी और दीर्घ हुई जा रही है ।
चलचित्रो के रजत पटों पर
मैं सौन्दर्य और लालसा की
अथाह गहराइयाँ निचोड़ता हूँ ।
मेरे सीत्कार मेरे शरीर की भूख को
अभिव्यक्त करने वाले
परमपूत मंत्र है–
मेरी सीटियाँ, मेरे गन्दे संकेत
मेरे अन्दर विगलित स्रष्टा के
पौरुष की चुनौतियाँ हैं
जो मुझ में है ही नही–
मै असंख्य मानवो के बीच
निभृत, एकांत, अकेला, अधोचेता ऋषि हूँ–
जो नित्य मंत्रोच्चार करता है
मुझे मृत्यु दो, अमृत नहीं ।



ह्यूमैनिज्म



ह्यूमैनिज्म
दर्शन से साहित्य तक
कितने अर्थ दे गया है ।
जड़ से चेतन तक
एक ही सूत्र व्याप्त है–
"सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।"
एक जोर से
ब्रेक लगने की आवाज
एक चीख,
और कटते हुए पेड़ सा
एक धुंधला आकार
तन्हा सड़क
थोड़ा अंधेरा ।
मैं दरवाजे से
झांकता हूँ
कार भाग गई,

और मैं
बड़ी कड़ुवाहट लिए
बत्ती बुझाकर
सो गया।



मैं आसमान और तुम



मैं आसमान हूँ
विस्तृत सीमाहीन
अगाध, ऊर्ध्वचेता,
मेरे इस विस्तार की
परिधि नहीं है,
क्योंकि मैं किसी भी
दिशा काल से आवेष्टित
नहीं हो सकता।
अर्गलाहीन स्वच्छन्द
मेरे व्यक्तित्व की
ओ! रहस्य-मौन नील छाया
तुम कितनी अर्थवती हो!
किन्तु ये क्षितिज
ये श्यामल स्फटिक काराएँ
यह चांद कलंकी
यह सूरज तप्त, स्फोटी-अभिशप्त

ये शत्-शत् नीहारिकाएं
धूमिल, उदास
ये अनाम तारे
प्रज्ज्वलनशील धब्बे
ये क्या है ?
मेरे उन्मुक्त असीम स्वच्छन्द व्यक्ति की
अगाधता को न समझने वालो,
मुझ पर थूको मत, कीचड़ मत उछालो, गालियां न
मेरी अगाध नीलिमा इनसे कलुषित नहीं हो सकती



सूरजमुखी घृणा



मैं प्रकाशान्ध हूँ
एक पैर पर खड़ा
सिर्फ माथा घुमाकर
दिशाओं में
घूमता रहता हूँ,
और फिर
नतमस्तक
डूब जाता हूँ।
मैं एक ओर का राही
दूसरों का सौजन्य
उनकी साधुता,
दया
और इन्सानियत से
मेरी आँख मुंद जाती है
मैं सूरजमुखी घृणा हूँ।



अहं



मैं सत्यानाशी का फूल हूँ
अनन्त प्रसार में
उन्मुक्त बिखरा हुआ
किन्तु
अपनी सीमाओं में
सुस्थिर कंटीला।
मेरे बिखराव में
सिर्फ मैं ही हूँ,
क्यों कि
मैं और कुछ उगने ही नहीं देता।
मैं सब कुछ छा लेता हूँ
क्योंकि
मैं किसी को छाने नहीं देता हूँ।
मैं एकाकी जीता हूँ
क्योंकि मैं सत्यानाशी हूँ।
मैं अमरबेल हूँ,

रक्त हीन,
आभारहित
लिजलिजा
मैं परोपजीवी हूँ
अपनी अनन्त ग्रंथियों से
रस खींचकर
मैं जीता हूँ,
मैं अहं हूँ ।



फार्मेशन



विश्वास से उठता हुआ अविश्वास
चेतना तोड़ती हुई जड़ता
अन्धकार की आँख
'ताजमहल की सफेदी'
'भाखड़ा बांध'
'नेपलम बौम'
हिन्दुस्तान भी नहीं–
वियतनाम भी नहीं–
मुर्दा शरीरो पर रेंगती हुई
खूनी चींटियों की कतारें–
हिटलर के नात्सी सिपाही
अमरीकन जी. आई.
चीनी लाल-रक्षक।
भुरभुराती हुई अनाम देश की
अनाम मिट्टी–
सोना उगलेगी ?
हड्डियाँ उगलो–

उनमें कोई अविश्वास नहीं–
कोई जड़ता नहीं--
वे अपने आप जुड़कर
कल के–
कंकाली योद्धाओं की फार्मेशन बना रही है।



नर और मादा



मै गहरा कुआ था
विवेकशील पुरुष ।
तुम सुन्दर पगडंडी थी
कृशकाय लम्बी, फैली हुई
आकर्षक हृदय
सृजन की स्वामिनी ।
नहीं, मैं केवल नर
तुम केवल मादा
आओ, प्यार का खेल करें
और फिर अपनी अपनी
दिशाएं ढूंढ लें—
कोई और मादा
कोई और नर
लेकिन, एक बात सोचता हूँ
कि मेरी सन्तति ने
अगर यही दिशा चुनी
तो कहीं
मेरे ही देश में वह
विदेशी न हो जाए ।

क्या करूं ?



सुनो !
अपने कमरे में
नींद की गोलियाँ खाकर
सो जाते हो।
उठ कर बूढ़े सूरज को देखते हो
खाट पर पड़े-पड़े
चाय के प्यालों पर प्याले
पी जाते हो,
समाचार पत्रों के
मोटे-मोटे अक्षरों को
चूस-चूस कर
कागज खाली कर डालते हो,
सिगरेट के धुएँ के
सुरमई छल्लों से खेलते हो,
फाइलों के उभारों
में, आँखें गड़ाये रहते हो।

सूखा हुआ बांस और अहं



जेठ की तूफानी हवाओं से प्रताड़ित
बांसों के घने जंगल को देखा है ?
और वहाँ से उठते हुए
झंझा के स्वरों में
चीखते हुए—
उनके टकराने की आवाज सुनी है ?
हरे भरे जंगल में आग लगते देखी है ?
लेकिन वह आग हरीतिमा की है
बांस का जंगल सूखता भी है
जलता भी है
किन्तु
हरा बांस
जमीन तक झुक जाता है
उसमें लचक होती है
मैं सूखा हुआ बांस हूँ
जो तूफान के झोंको में

एक दूसरे से टकराकर
जलता नहीं।
मैं अपने आप में जलता हूँ।
मैं झुकता नहीं
टूट जाता हूँ
क्योंकि मैं अहं हूँ।



प्रतीक्षा



प्रतीक्षा है
एक ऐसे शब्द की
जो
आपके और मेरे बीच पड़ी दूरी को
दूर कर दे।
प्रतीक्षा है—
गहरे कुए सी प्रतीक्षा है,
उस क्षण की
जो
केवल मेरे विश्वास पर
कागजी कार्यवाही बन्द करदे—
और, मेरे प्रत्येक शब्द को
विश्वास मान ले।
हिमालय के पीछे
छिपे हुए विश्वास की सौगन्ध
युगों से लापता उस शब्द की सौगन्ध

मुझे अभी तक विचलित किए हुए
उस क्षण की सौगन्ध ।
सच कहता हूँ—
मैं बात का धनी हूँ
पराये दुःख का दुखी हूँ
पत्थरीला विश्वास हूँ ।
और अभी प्रतीक्षा है—
उस यथार्थ की
जो यथार्थ होकर भी
प्रकाशकों-
सम्पादकों की अलमारियों में बन्द है ।
प्रतीक्षा पर प्रतीक्षा है—
पर अभी—
पता चला, ये सभी चीजे
इस युग की नहीं हैं,
जिनकी मुझे, प्रतीक्षा है ।



क्यों ?



हर सुबह एक नया गुलाब
खिलता है—
चटकीला, लाल ।
लेकिन तुम
हर सुबह नई क्यों नही लगती ?
मैंने भी तो अतृप्ति के काँटों से
तुम्हें जकड़ रखा है,
पर तुम्हें फूलदान में तो नही रखा है ।
मेरे कमरे में
कोई भी तो वन्धन नही,
सभी आदर्श, मान्यताएँ, मूल्य
और परम्पराएँ, रीति-नीतियाँ
मेरे कमरे में टूटी पड़ी है ।
मैं महज भोग देता हूँ
और भोग लेता हूँ
फिर गुलाब, हर सुबह

नये रंग में क्यों होता है ?
और तुम्हारे गालों का रंग
हर सुबह चितकबरा क्यों
हो जाता है—
श्मशान में पड़े मृतक शरीर
की हथेली जैसा ?
क्या मैं तुम्हें पीता हूँ ?
भरता नही ?
रिक्त करता हूँ
संवारता नही ?
फिर यह क्यों है ?
मेरा भोग,
मेरा बन्द कमरा,
क्या
सौन्दर्य का विनाशक है ?



नई शाम : नई चद्दर



मेरे मन की चौखट पर
बिछी खाट पर
कई आकर सोते हैं
मदिरा में बहकते हैं
वे दूर नहीं हटते ।
उन्हें कोई प्रीत होगी—
मैं तो विरासत में मिली
वासना को तृप्त करता हूँ ।
वे कुछ भी समझें—
मेरी खाट पर
हर शाम नई चद्दर होती है ।
चांद
हर रोज
बादलों के नये रूप
भोगता है—
मैं कोई बलात् नही करता,

निमंत्रण नही देता
लेकिन
हरी घास पर
बिछने को बूँदे ग्राती ही है
टूट कर जहाँ तहाँ टकराती हैं।
खाट पर सभी सोते है
मदहोश वहकते भी हैं–
भूल कुछ नहीं, ग्रौर ग्रगर है भी
तो हर भूल के बाद मैं,
नयी भूल स्वीकारता हूँ
नयी चद्दर बिछाता हूँ।



सर्प-दंसन



वर्षों की साधना, तपस्या के बाद,
मैं सिद्ध हो गया ।
ऊर्ध्वाकाश में खड़ा हो गया–
जहाँ आस्तिकता की
जहाँ आनन्द और शान्ति
की अनन्त भास्वर चेतना
आलोकित रहती है–
उस ऊँचाई से मैंने
आक्रोश से देखा–
इन्सानी जंगलों को
अयतप्त हवाओं को
वासना से पीड़ित
लज्जाओं को
मर्यादाओं को,
तर्क, नियम, काम–
रति सब को ।

उनको अभिशप्त करने
के लिए
मैंने जल भरी
अंजलि उठाई–
मंत्र पढ़ा–
और मुझ ऊर्ध्व–सिद्ध को
वहीं
खड़े खड़े
सांप ने डस लिया।



कंकाल



ओ मित्र !
तेरी लाश
मेरे कमरे की छत पर
उल्टी पड़ी है–
मूल्यों की हड्डियाँ
जुड़ी हुई है
कितना खूब सूरत कंकाल है यह।
सामाजिक पहरेदारों के बीच–
लाश काली हुई जारही है।
कल के समाचार पत्र में
एक खबर थी–
हिन्दुस्तान के
कॉफी हाऊसों का
'हिमालियन विश्वास'
हिल उठा है–
गजब हो गया
अब विश्वास कहाँ मिलेगा ?

आस्थाएँ कहाँ आश्रय खोजेंगी ?
लाल रक्षकों ने
माओ को मार डाला
(शायद)
और उसकी किताबों
को बाइबिल बना दी
चीन–चीनी मुर्दाबाद।
बिट्निक्स
ने मुझे फिल्मी गीत सिखा दिये–
मैने भांग पीली ।
मेरी जबान
वियतनामी हत्याओं पर
चुप्प है।
अरे सुनो तो
तुम्हारी सांसे चलने लगी है
पर मेरी सांस
बन्द होने लगी हैं।



परम्पराएँ



महाकाश का सूर्य
एक दिन
अपने
मार्ग को छोड़
बीमार मित्र की
कुशल पूछने
उसके घर गया ।
वह भीषण ताप से
जल कर
मर गया ।
और सूर्य
फिर उसी ढर्रे पर
चलने लगा ।



अवशेष



वीर वहूटी की तरह–
लजीली–
कल शाम
मंगल गीतों के बीच
डोली में बैठ
दुल्हन थी।
आज
मैं, केवल
मादा रह गई हूँ।



विसंगति



पहले यह कठिन लगता था
अब नही लगता
कि शहर की खुली छत पर कैसे सोऊँ ?
कल तक खुली छत पर
ओढ कर
मुँह ढककर सोता था
लेकिन अब खुले मुँह
सोने में मुझे सपने आते हैं !
चांद की अनन्त गहराई
और आँख मिचौनी करते इन–
सितारों को–

मैं कभी नही देखता था
लेकिन अब
अमावस्या की रात मुझे डसने लगी है ।
आफिसों की फाइलों में
झूठे आंकड़े लिखते शर्म आती थी

दर्द होता था
लगता था
मैं टूट जाऊँगा,
पर अब हर शाम
और टूट रहे हैं।
तारीखें बदलती हैं–
पहले शराबी को देख
जी मचलता था–
लेकिन अब पीने पर भी जी रूकता नहीं।
कल शाम तक मैं
पहली तारीख की प्रतीक्षा नहीं करता था
अब महीने की आखिरी तारीख
मेरी योजना है
और पहली तारीख
मेरी रात की पहली चाँदनी है।
यह भूल थी–
कि समुद्र में बैठी विरहिणी
की बदलती करवटों को, अंगड़ाइयों को
मैं आया हुआ ज्वार भाटा समझता था–
अब जान गया हूँ
वियतनाम में हुई हत्याएँ
यौवनाधिक्य की प्रताड़नाओं का शाप था।

अब—
शहर की खुली छत पर
सोते शर्म नहीं आती—
और अब मैं नंगा सोता हूं।
मेरे बदले रूप को देख,
आपको लगता है कि
इस शहर में मेरा दम घुट रहा है
गलत—
मेरा बदला इन्सान इसमें रम रहा है—
जग रहा है
सो रहा है।



भाव



सुबह की भेजी हुई
गाय पर
गोधूली में धब्बे लगे मिलते हैं।
हर शाम
तीन बरस की बच्ची
मुस्कान के गंगाजल से
धो देती है उन्हें ।
आकाश पर फूले
सितारे
जलते धब्बे
सूर्य अपनी उषाकालीन
विद्युत किरनों से
जला कर राख कर देता है।
साफ कर देता है।
सोचता हूँ
काश !
आकाश के भी
कोई बच्ची होती ?



आक्रोश



जो चाहता है—
आज इस शहर के
बिजली घर को आग लगा दूं।
अंधेरे ही अंधेरे में
वे सभी अतृप्त
फूल की सौरभ पी जायं
और मसल जाय।
तीन दिन के भूखे—
एक रात
भर पेट खालें।
दिन के सभी सज्जन
जो रात लूटते हैं—
एक ही बार लूट लें—
और मैं—
खड़ा खड़ा, उन
सभी वही खातों को जला दूं
जिनमें अंगूठा छाप
कई हजारों के
झूठे हस्ताक्षर है। 